ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 25 | अंक 08 | विक्रम संवत् 2077-78 अगस्त 2021 | पृष्ठ 34

संरक्षक : विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

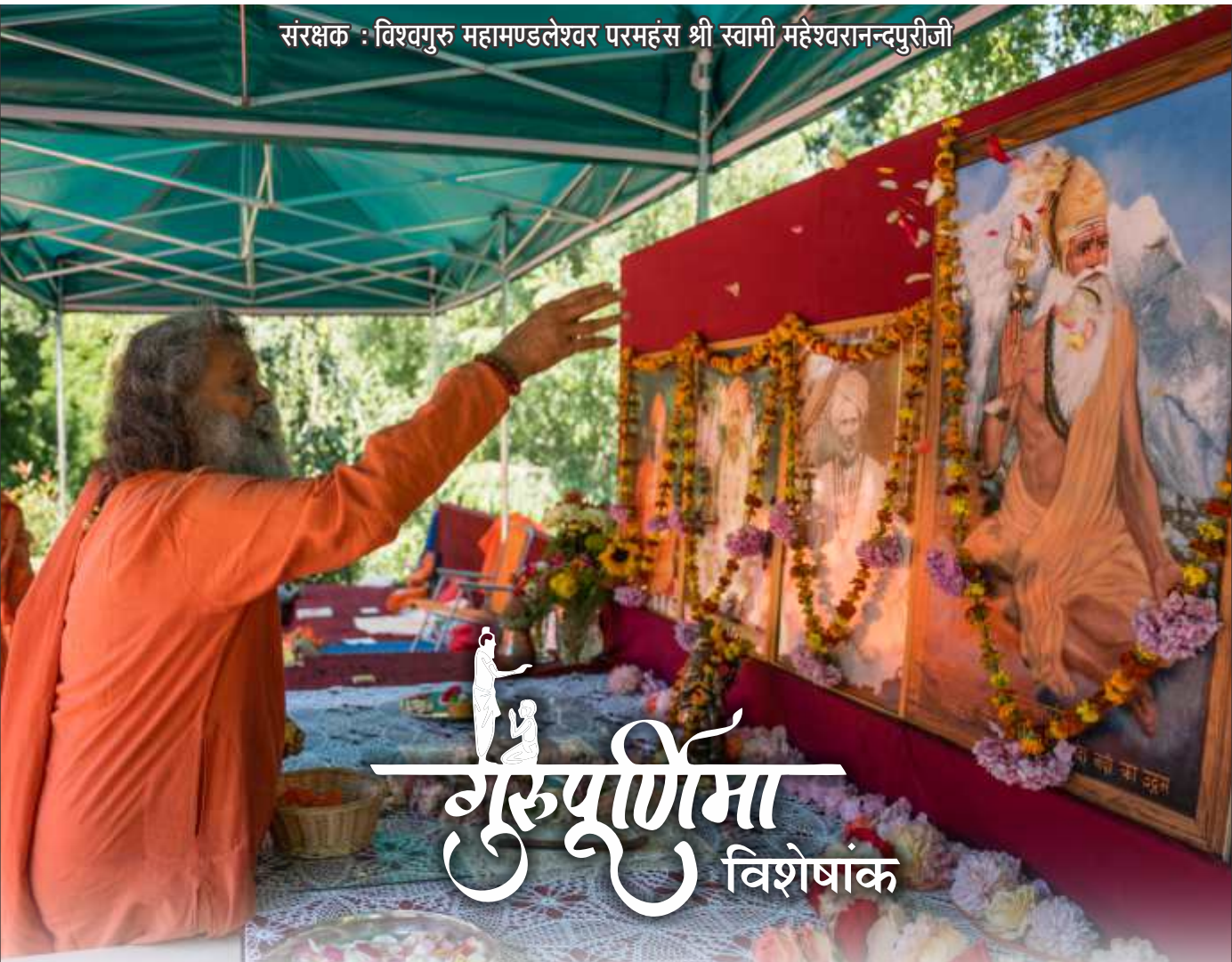

गुरुपूर्णिमा विशेषांक

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Narayan

© Yoga in Da

ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 25 | अंक 08 | विक्रम संवत् 2077-78 अगस्त 2021 | पृष्ठ 34

परामर्शदाता
देवर्षि कलानाथ शास्त्री
पण्डित अनन्त शर्मा
डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर
प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
डॉ. शीला डागा
प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार

प्रधान सम्पादक
सोहन लाल गर्ग

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. रामदेव साहू
डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा
तिबोर कोकेनी
श्रीमती अन्या वुकादिन

सहयोग
नवीन जोशी

- प्रमुख संरक्षक -
परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

- प्रेरणास्त्रोत -
भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

- संस्थापक -
परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

- संरक्षक -
विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस
श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

- प्रबन्ध सम्पादक -
महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान
(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)
कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in | **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram | **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

	सम्पादकीय		3
1.	तस्मै श्रीगुरवे नमः	प्रस्तोता : डॉ. दयाराम स्वामी	4
2.	गुरुपूर्णिमा के अवसर पर महिमा गुरु की	देवर्षि कलानाथ शास्त्री	8
3.	पुनः पुनर्नमस्तेऽस्तु	डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर	11
4.	आचार्यः शास्त्राधिगमहेतूनाम्	प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड़	16
5.	गुरु की महिमा	धीरेन्द्र कुमार स्वामी	27
6.	रुद्राष्टकम् (संस्कृतहाईकू)	प्रो.ताराशंकर शर्मा पाण्डेयः	30
7.	राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्	डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर	31

विश्वदीप दिव्य संदेश पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क **800/- रूपये**

खाता संख्या : 5013053111

IFS Code : KKBK0003541

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोधपत्रिका का वर्ष 2021 का अष्टम अंक आपके करकमलों में अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। भारतीय धर्म-संस्कृति के शोधलेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। विद्वानों द्वारा नियमित भेजे जा रहे शोधलेख हमारा मनोबल बढ़ा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं।

इस अंक में सर्वप्रथम स्व. श्री बलराम स्वामी न्यायाचार्य विरचित ''तस्मै श्रीगुरवे नमः'' गुरु के प्रति आत्म समर्पण एवं गुरु महिमा की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है। तत्पश्चात् देवर्षि कलानाथ शास्त्री द्वारा लिखित 'गुरुपूर्णिमा के अवसर पर महिमा गुरु की' लेख में गुरुपूर्णिमा के महत्त्व के साथ साथ व्यास पूर्णिमा को ही गुरुपूर्णिमा कहने का रहस्य प्रतिपादित किया गया है। इसके पश्चात डॉ. नारायण शास्त्री काङ्कर ने ''पुनः पुनर्नमस्तेऽस्तु'' संस्कृत कविता में गुरु से अज्ञान विनाश एवं लोककल्याण की अपेक्षा प्रस्तुत की है। इसी क्रम में प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड़ द्वारा लिखित ''आचार्यः शास्त्राधिगमहेतूनाम्'' लेख में गुरुत्व का ऐतिह्य तथा आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित गुरु शिष्य सम्बन्ध की परम्परा को प्रस्तुत किया गया है। तद्नन्तर धीरेन्द्र कुमार स्वामी द्वारा लिखित ''गुरु की महिमा'' लेख श्री दादूजी महाराज के गुरु विषय उद्गारों को प्रस्तुत करता है। गुरु के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन अत्यन्त प्रेरणास्पद है। इसके अनन्तर प्रो. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय द्वारा विरचित 'रुद्राष्टकम्' अभिनव संस्कृत विधा हाईकू के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। जिसमे भगवान् शिव के लिंगस्वरूप का वर्णन किया गया है। अन्त में डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के 'राष्ट्रोपनिषत् प्रस्तावना शतकम्' के कतिपय पद्य प्रकाशित किये गये हैं, जो गुरुशिष्यपरम्परा के गौरव को प्रदर्शित करने के साथ साथ आत्मचिन्तन की प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने में अपना उत्साह पूर्ववत् बनाये रखेंगे।

शुभकामनाओं सहित....

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

स्व. श्री बलराम स्वामी न्यायाचार्य विरचिता श्रीगुरुविंशतिका

तस्मै श्री गुरवे नमः

प्रस्तोता : डॉ. दयाराम स्वामी
एम.बी.बी.एस. एम.डी. (स्वर्णपदक)
वरिष्ठ मानसिक-रोग-विशेषज्ञ एवं पूर्व प्रमुख विशेषज्ञ, एस.एम.एस. हॉस्पिटल, जयपुर
सदस्य - संचालन समिति, श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर

संसारे खलु मानवो हि कथितः सर्वोत्तमः प्राणिनां,
तस्येदं सकलोत्तमत्वमिह यत् ज्ञानं हि तत्कारणम् ।
ज्ञानं चेत् समुपार्जितं तदमुना सोऽयं मनुष्यो भवेत्,
नो चेद् मानवदेहवानपि पशुः स्यादेष वै सर्वथा ।।1।।

ज्ञानं नैव नु मन्यते किमपि यज् ज्ञानेन्द्रियैर्लभ्यते,
यद् बुद्ध्यास्तु विवेचनेन जनितं ज्ञानं हि तन्मन्यताम् ।
बुद्धिश्चेत् सुपरिष्कृता तदनया सम्यग् विवेको भवेद्,
बुद्धिं यश्च परिष्करोति ददते ज्ञानं च सोऽयं गुरुः ।।2।।

शिक्षाभिः खलु बुद्धिवह्निकणिकां फूत्कृत्य फूत्कृत्य च
शिष्यं जागरितं विधाय सदसद्दृष्टिं प्रयच्छेद् गुरुः ।
सोऽयं जागरितो हि शिष्यपुरुषः सूक्ष्मेक्षिकाभिः स्वयं
सत्यासत्यविवेचनं तु कुरुते गृह्णात्यथो सत्पथम् ।।3।।

संसारे द्विविधाः स्थिता गुरुजनास्ते लौकिकाः केचन
केचिच्चात्र तु पारमार्थिकगुरुश्रेणीसमारोहिताः ।
बाहुल्येन तु लौकिका हि गुरवः सर्वत्र लभ्याः सदा
ये चान्ये परमार्थसिद्धगुरवस्ते दुर्लभाः प्रायशः ।।4।।

लोके लौकिकवृत्तशिक्षकतया तत्तद्विशेषेषु वै
ये बुद्धिं तु विकासयन्ति सुधियस्ते लौकिकाः प्रायशः।
आत्मानं तु विकासयन्ति परमब्रह्मोपदेशैस्तु ये
ते वै सद्गुरुसंज्ञयाऽत्र सुजनैः सम्मानिताः सर्वदा।।5।।

विद्यां कामपि शिक्षयन्तु गुरवः किं भौतिकीं वाऽऽत्मिकीं
ते सर्वेऽ पि तु पूजनीयपुरुषाः सम्माननीयाश्च ते।
केचित् लौकिकजीविकासु कुशलीकुर्वन्ति चेन्मानवान्
मन्ये तान् परमार्थसाधनदिशासन्दर्शने सङ्गताः।।6।।

विद्यादातृतया तु यद्यपि समं लोके गुरूणां द्वयं
किन्त्वत्रास्ति विशेषमान्यमहिमा श्रीसद्गुरुज्ञानिनाम्।
यां विद्यां ददते तु शिक्षकजनास्तन्निष्क्रयः सम्भवेद्
विद्यां यां ददते तु सद्गुरुजनास्तस्या हि नो निष्क्रयः।।7।।

नो दाता गुरुणा समो भवति वै भिक्षुश्च नो शिष्यवत्
यो लोकत्रयसम्पदां तु ददते शिष्याय वृद्धो गुरुः।
नो साधारणमानवो गुरुरहो सोऽलौकिकः पूरुषः
त्रैलोक्ये गुरुतो महान् न हि परः सोऽयं महद्भ्यो महान्।।8।।

यत्कुर्यान्नानु सद्गुरुर्न तु तथा कुर्याद् महानीश्वरः
नो दद्यात् परमेश्वरोऽपि तदहो दद्यात्तु यत् सद्गुरुः।
सेतुः स्यात् परमेश्वरं प्रति परं पारं प्रयातुं गुरुः
अर्धोऽयं परमेश्वरो यदि तदाऽर्धेनास्त्ययं मानवः।।9।।

मध्ये तिष्ठति सद्गुरुर्भगवतो भक्तस्य शिष्यस्य च
सोऽयं चोभयपक्षयोरपि समं जानाति भाषाद्वयम्।
सम्पर्कस्य हि साधकोऽयमुभयोः स्याच्चैष सन्देशवाट्
नो शिष्यो गुरुमन्तरा भगवता सम्बन्धमासादयेत्।।10।।

सर्वोच्चासनसंस्थितो हि भगवान् पूर्णप्रकाशो हि सः
जीवोऽयं पुनरन्धकारपरिखागम्भीरगर्त्तस्थितः
जीवानां नहि वेदनास्वर इयत् प्रोच्चः पदं प्राप्नुयात्।
मध्यस्थो गुरुरेव शिष्यविनयं सम्प्रेषयेत् तं प्रति ।।11।।

सामान्येन हि सद्गुरुर्यदपि वै स्यात् सर्वसाधारणः,
देहित्वान्ननु तत्र देहघटना सर्वप्रकारा अपि ।
देहेनान्यसमानतामुपगतोऽप्येष प्रकृष्टस्ततः
दीपो यद्यपि मृण्मयोऽत्र विलसद् ज्योतिस्तु नो मृण्मयम् ।।12।।

सामान्येन जनस्य जीवनपथः स्याद् यादृशो लौकिकः ।
तस्मादन्यविधैव जीवनदिशा बुद्धात्मना जायते ।
तस्मादेव तु ते सदा भगवतो ह्यंशावतारात्मना
विख्याता बहुमानिताश्च सततं साधारणैः पूरुषैः ।।13।।

अस्माकं खलु पार्श्वतः स्थिततया दृश्या इमे यद्यपि,
किन्त्वेते खलु केवलेन वपुषाऽस्माभिः समं संस्थिताः ।
आात्मैषां परमात्मना सह सदा संवादमातिष्ठते
तेषामेष विशेषमान्यमहिमा तस्माद् महान्तो हि ते ।।14।।

संसारे नहि शिक्षयन्ति तदिमे काञ्चित् कलां लौकिकीं
ते विद्यां वितरन्ति कामपि परां दिव्यां च लोकातिगाम् ।
तस्मात् सद्गुरुशिष्ययोरिह समो योगोऽस्ति नो लौकिकः ।
सम्बन्धोऽयमलौकिकोऽतिमधुरः अक्षांशुभिर्निर्मितः ।।15।।

छात्राणामथ शिक्षकस्य च मिथो भेदो गुणैर्नास्ति भो,
भेदोऽयं परिणामतः खलु तयोन्यूनाधिकत्वाङ्कितः ।
छात्राणां ननु जीवनीयविषये विज्ञानमल्पायितं
तत्तस्मिन् विषये हि शिक्षकजना जानन्ति किञ्चिद् बहु ।।16।।

स्यात् सांसारिकवस्तुबोधविषयो मात्रात्मको विस्तरः
आत्मास्तित्वविकासकस्तदितरः सोऽयं गुणात्मा भवेत्।
कामं मास्तु महात्मनो हि बहुशो ज्ञानं पदार्थात्मकं
किन्त्वेषां परमात्मसीम्नि विगतः स्यादात्मनो विस्तरः।।17।।

चैतन्येन च बुद्धितश्च विकसेत् कश्चिद् विशिष्टो जनः
चैतन्येन विकास एव तु वरो बुद्धेर्विकासाद् भवेत् ।
तस्मादेव महात्मनां समधिकं पूजा भवेत् भारते,
सम्पन्नैरपि शासकैश्च गुरवः सम्मानिताः पूजिताः ।।18।।

गोविन्दस्य समीपतां गमयितुं गृह्णाति हस्ते गुरुः,
साक्षात् श्रीहरिसन्निधिं नु स नयेत् शिष्यं सुनिष्ठं पुनः ।
इत्थं श्रीगुरुदेव एव भगवत्सन्दर्शनं कारयेत्
तस्मात् श्रीगुरवे नमो भवतु वै भूयश्च भूयो नमः ।।19।।

दूरे नैव तु तिष्ठतीह भगवान् सोऽयं तु सर्वान्तिकः
अज्ञानोपहतस्तु लोकनयनैर्नायं पुनर्दृश्यते ।
अज्ञानं गुरुदेव एव कुशलो ज्ञानाञ्जनैर्नाशयेत्
तस्मै श्री गुरवे नमोऽस्तु सुतरां बुद्धाय शुद्धाय च ।।20।।

गुरुपूर्णिमा के अवसर पर महिमा गुरु की

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपतिसम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

भारत में गुरु को, शिक्षक को, विद्यादाता को, मंत्रदाता को, मागदर्शक को सर्वोच्च श्रद्धा का अधिकारी माना गया है। जो देश ज्ञान के पूजक हैं, उन सब में गुरु को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। कृष्ण जगद्गुरु हैं, वेदव्यास मंत्रगुरु हैं, इसलिए हम उन्हें पूजते हैं। गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह तक दस गुरु मार्गदर्शक होने के कारण पूजे जाते हैं। उनके बाद उनकी गुरुपरम्परा ग्रन्थसाहेब में समाहित हुई, इसलिए ग्रन्थ की पूजा होती है। कबीर का यह दोहा प्रसिद्ध है -

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गोविन्द से बड़ा गुरु होता है, बल्कि इसका आशय यह है कि ज्ञान का महत्त्व तभी है, जब हम उसे अधिगत कर लें, अतः उस ज्ञान को हम तक पहुँचाने वाला महत्त्वपूर्ण है - वह गुरु हो या ग्रन्थ। हमारे यहाँ तो श्रीमद्भगवद्गीता की तरह एक गुरुगीता का पाठ भी बहुत से आस्तिक लोग करते हैं, जिसके कुछ पद्य तो जन-जन के कंठ में बैठे हुए हैं-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

''गुरु में ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश का दर्शन होता है। वे स्वयं परब्रह्म हैं, अतः मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।' यह गुरुगीता स्कन्दपुराणान्तर्गत बतायी जाती है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।

जो गुरु अज्ञान के अन्धकार में दृष्टिहीन बने। अबोध शिष्य ही ऊँची आँखों को ज्ञान का अंजन लगा कर ज्योतित कर देता है, उससे अधिक प्रणम्य कौन है?

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

जो अखंड, अनादि ब्रह्म चराचर में व्याप्त है, उसका ज्ञान देने वाला गुरु ही तो है, उसे प्रणाम।

जाबालिसंहिता में कहा गया है -

वन्दे गुरुपदाब्जं यो नररूपः स्वयं हरिः।
यद्वाक्यसूर्योदयतस्तमो नश्यति सांप्रतम्।

इसका अनुवाद गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने यों किया है-

बन्दउँ गुरुपदकंज कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज जासु बचन रविकरनिकर।।

अर्थात् गुरु की वाणी वह सूर्य है जो अज्ञान के अन्धकार का नाश कर देती है। गुरु की यह प्रतिष्ठा इस तथ्य का प्रमाण है कि यह देश ज्ञान, अध्ययन, शोध और विद्या का आराधक रहा है। उत्कृष्ट ज्ञान जहाँ से भी प्राप्त हो, उसको श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना हमारा लक्ष्य रहा है। तभी तो दत्तात्रेय जैसे मनीषी ने अपने चौबीस गुरु बतलाए। उन्होंने मधुमक्खी से सार ग्रहण करना सीखा, हाथी, अजगर, हिरन आदि से उनके गुण सीखे। हमने गुरु की परिभाषा पर भी विचार किया है।

कूर्मपुराण में कहा गया है -

यो भवयति यः सूते येन विद्योपदिश्यते।
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पंचैते गुरवः स्मृताः।।

हमें अस्तित्व में लाने वाला पिता तथा जन्म देने वाली माता ये नैसर्गिक गुरु हैं, प्रथम शिक्षक हैं। फिर ज्ञान देने वाला शिक्षक गुरु है। बड़ा भाई सदा सीख देता है। विवाह के बाद पत्नी को पति मार्गदर्शन देता है। ये सभी नैसर्गिक गुरु हैं।

प्रतिवर्ष आषाढी पूर्णिमा को गुरुपूर्णिमा पर्व मनाया जाता है। इसका कारण तो यह है कि वेदव्यास की जयन्ती आषाढी पूर्णिमा के दिन मनाई जाती है। इसे व्यास पूर्णिमा भी कहा जाता है। वेदव्यास इस देश के जनजीवन के साथ इस प्रकार अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं, कि वेदों की समस्त ऋचाओं का संपादन और वर्गीकरण करके उन्होंने चार वेद प्रतिष्ठित किये, अठारह पुराणों की रचना की, महाभारत और श्रीमद्भागवत का प्रणयन भी उन्होंने ही किया। इस प्रकार वे वेदों को पुराणों से जोड़ने वाली कड़ी तो हैं ही, अद्वैत दर्शन और भक्तिमार्ग के भी आदि स्रोत कहे जा सकते हैं।

बादरायण व्यास ने उन वेदान्त सूत्रों की रचना की, जिन्हें ब्रह्मसूत्र भी कहा जाता है और जिनका अपने अपने दर्शन के दृष्टिकोण से भाष्य लिख कर शंकराचार्य ने अद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा की तथा रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ, चैतन्य, रामानन्द आदि विभिन्न वैष्णव आचार्यों ने ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या अपनी दृष्टि से करते हुए विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत शुद्धाद्वैत, अचिन्त्याद्वैत, रामाद्वैत आदि संप्रदायों का प्रवर्तन कर वैष्णव भक्ति की ऐसी अमर भागीरथी बहायी, जिसकी अमृतधारा में भारत की बड़ी जनसंख्या आज भी नहा रही है। इन गुरुओं से दीक्षा ले कर करोड़ों भारतीय आज तक आराधना में तत्पर है। वे गुरुपूर्णिमा के दिन ही इन गुरुओं को श्रद्धासुमन इसीलिए चढ़ाते हैं कि, जिन बादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या कर विभिन्न आचार्य जगद्गुरु बने हैं, उन व्यास की जयन्ती आषाढ़ी पूर्णिमा को मनायी जाती है। व्यासपूर्णिमा को गुरुपूर्णिमा कहे जाने का यही रहस्य है।

वेदवाणी

भद्रमिच्छन्त ऋषयः, स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातम्, तदस्मै देवा उप संनमन्तु।।

सब का कल्याण चाहने वाले और सुख-प्राप्ति की विद्या के ज्ञाता ऋषियों ने पहले तप और नियमपालन की शिक्षा का अनुष्ठान किया। उसी से राष्ट्र, उसका बल और पराक्रम सिद्ध हुए। विद्वानों को चाहिए कि ऐसे राष्ट्र को अपना पूरा पूरा सहयोग दें।

Those who wished the welfare of all and who knew the path of happiness, such sages first practiced penance and carried on good rules. Due to this the nation, its power and velour came into existence. All scholars should co-operate fully with such a nation.

पुनः पुनर्नमस्तेऽस्तु

आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार
(महामहिम-राष्ट्रपतिसम्मानित)

गुरुदेव! नमस्तुभ्यं, वारं वारं नमो नमः।
अज्ञान-तिमिरं हंसि, ज्ञान-दीपेन भास्वता ।।1।।

हे गुरुदेव! आपको नमन हो, बारं बार नमन हो, नमन हो। आप देदीप्यमान ज्ञानरूपी दीपक से अज्ञानरूपी अन्धकार को मार देते हैं।

त्वदन्यः कः कृपा-सिन्धुर्, यदीशमपि दर्शयेत्।
त्वद्-ऋणं शोधयितुं नो, शक्यं कदापि किञ्चन।।2।।

आपसे दूसरा अन्य कौन कृपासिन्धु है? जो ईश्वर को भी दिखा दे। आपका ऋण कभी कुछ भी उतारा नहीं जा सकता।

अनन्तो महिमा तेऽस्ति, वर्णयितुं न शक्यते।
कृपां त्वं यदि कुर्या न, किं भवेज्जगतः स्थितिः।।3।।

आपकी महिमा अनन्त है, वर्णित नहीं की जा सकती। आप यदि कृपा नहीं करें, तो क्या जगत् की स्थिति सम्भव है?

मतिं शोधय सर्वेषां, सदा कुपथ-गामिनाम्।
एत एव सुखं शान्तिं, हरन्ति तस्करा इव।।4।।

सदा सभी कुपथगामियों की बुद्धि को आप शुद्ध कर दीजिये। ये तस्करों की तरह सुख-शान्ति का अपहरण करते हैं।

पर-पीडाभिज्ञेनैव, जानन्ति स्वार्थ-साधकाः।
स्वयमपि सुखं शान्तिं, चिरं नानुभवन्ति हि।।5।।

ये स्वार्थ को साधने वाले लोग परायी पीड़ा को नहीं जानते हैं। स्वयं भी चिरकाल तक सुख-शान्ति को अनुभूत नहीं करते।

निरङ्कुशा इमे लोका, भ्रष्टाचारं प्रकुर्वते।
त्वमेवैभ्यो गुरो! देहि, सद्बुद्धिं सुख-शान्तिदाम्।।6।।

निरङ्कुश बने हुए ये लोग भ्रष्टाचार प्रकृष्टरूप से करते हैं। हे गुरुदेव ! आप ही इनको सुख-शान्ति देने वाली सद्बुद्धि दे दीजिये।

संस्कृतं नैव शिक्षन्ते, स्वजनान् शिक्षयन्ति न।
कथं प्रादुर्भवेदेषु, स्पृह्या सत्पथ-गामिता?।।7।।

ये संस्कृत नहीं सीखते और स्वजनों को भी नहीं सिखाते। इनमें वांछित सत्पथ-गामिता कैसे प्रादुर्भूत हो?

संस्कृतस्य परित्यागात् कुतः सद्-वृत्त-शिक्षणम्?।
सद्-वृत्तं च विना सौख्यं, शान्तिश्चापि न लभ्यते।।8।।

संस्कृत का परित्याग कर देने से सदाचार की शिक्षा कहाँ से मिलेगी? और सदाचार के बिना सुख और शान्ति भी नहीं प्राप्त की जाती ।

संस्कृतस्य परित्यागात्, संस्कृतिर्नश्यति ध्रुवम्।
संस्कृतौ च विनष्टायां, मनुष्यो दानवायते।।9।।

संस्कृत का परित्याग करने से संस्कृति निश्चित रूप से नष्ट हो जाती है और संस्कृति के विनष्ट हो जाने पर मनुष्य दानवों जैसा व्यवहार करने लगता है।

शिक्षित-संस्कृतो जनो, भ्रष्टाचारं करोति कदापि नहि।
देशद्रोहोऽमुष्मिन्, न मिलति कीदृशोऽपि विनिन्द्यः।।10।।

संस्कृत की शिक्षा प्राप्त किया व्यक्ति कभी भी भ्रष्टाचार नहीं करता है। विशेष रूप से निन्दनीय कैसा भी देशद्रोह नहीं मिलता है।

शिक्षित-संस्कृतो जनो, न बलात्कारी न चातङ्ककारी।
नापि तस्करो न कार्य,-चौरो वञ्चको च न क्वचन भवसि।।11।।

-संस्कृत सीखा हुआ व्यक्ति न बलात्कारी होता है और न आतङ्ककारी ही। यह तस्कर, कामचोर या वञ्चक अर्थात् ठगने वाला भी नहीं होता है।

शिक्षित-संस्कृत-जनि तु, दुराचारो न दृष्टो द्रक्ष्यते च न।
दुराचारापराधैस्तु, शिक्षित-संस्कृतो न हि दण्डितः क्वापि।।12।।

संस्कृत सीखे हुए व्यक्ति में तो दुराचार / भ्रष्टाचार नहीं देखा गया है और भविष्य में भी नहीं देखा जायेगा। दुराचार / भ्रष्टाचार को अपराधों के कारण तो संस्कृत की शिक्षा प्राप्त किया हुआ व्यक्ति कहीं भी दण्डित नहीं किया गया है।

संस्कृतो न सामान्यः, शिष्टो भवति सोऽन्यतः।
विद्या-विनय-सम्पन्नः, सदाचारी सदा हि सः।।13।।

संस्कृत का जानकार पढ़ा लिखा व्यक्ति साधारण नहीं होता। वह तो दूसरों की अपेक्षा शिष्ट/विशिष्ट होता है। इसका ही नहीं, विद्या और विनय से सम्पन्न वह सदा ही सदाचारी होता है।

आत्मानं शिक्षितम्मन्या, दुराचरन्ति सर्वदा।
शासनस्यापि नैतेषु भयं किमपि दृश्यते।।14।।

अपने आपको शिक्षित मानने वाले ही सदा दुराचार किया करते हैं। इनमें शासन का भी कोई भी भय नहीं दिखायी देता।

आत्मवत् सर्वभूतेषु किमेते वर्त्तयन्ति भोः।
निर्दयास्तानि नित्यं हि, पीडयन्ति निरङ्कुशाः।।15।।

अजी! क्या ये अपने समान ही सभी प्राणियों में बर्ताव करते हैं? निर्दय और निरङ्कुश बने हुए ये तो उनको नित्य पीड़ित ही करते हैं।

दुराचारा इदानीं ये, विविधाः प्रसृता भुवि।

संस्कृतशिक्षणाभावः, किं नात्र मुख्य-कारणम्?।।16।।

इस समय भूमण्डल पर जो विविध दुराचार फैले हुए हैं, क्या इनमें संस्कृत शिक्षा का अभाव मुख्य कारण नहीं है?

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रोऽसि, सर्व-शक्तिस्त्वयि स्थिता।

गुरुदेव! त्वमेवाशु सर्वान् सत्पथमानय।।17।।

हे गुरुदेव ! आप सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो, आप में सब शक्ति स्थित है। कृपया आप ही इन सब को शीघ्र सत्पथ पर पर लाइये।

अशक्यं गुरुदेवाय, नैवासि तेऽग्र किञ्चन।

यदिच्छेर्मनसा तत्तु, त्वरितं किं न सिद्ध्यतु?।।18।।

आप गुरुदेव के लिये यहाँ कुछ भी अशक्य नहीं है। आप जो मन से चाहें - क्या वह त्वरित सिद्ध नहीं हो जाये?

विश्वगुरुरसि त्वं तु, विश्वे भ्रमसि सूर्यवत्।

शासकान् शासितान् सर्वान्, सद्यः सत्पथमानय।।19।।

आप तो विश्वगुरु हो और विश्व में सूर्य की भाँति भ्रमण करते हो। कृपया आप तत्काल सभी शासकों और शासितों को सत्पथ पर ले आइये।

पुनः पुनर्नमस्तेऽस्तु, सद्यःपूरय प्रार्थनाम्।

विश्वस्याप्यस्य विश्वस्य, सर्वं शमस्तु सर्वदा।।20।।

हे गुरुदेव ! आपको पुनः पुनः नमन हो। आप कृपया इस मेरी प्रार्थना को तत्काल पूर्ण कर दीजिये। इस सम्पूर्ण विश्व का सर्वदा सब प्रकार का कल्याण हो।

सन्मार्गस्थो हि सर्वोऽत्र, स्वाभीष्टं लभतां गुरो!

यतः स्वां त्वं दयादृष्टिं, कदापि माऽपसारय।।21।।

हे गुरुदेव ! यहाँ सभी लोग सन्मार्ग में स्थित हुए अपना अभीष्ट प्राप्त करें और आप कभी अपनी दयादृष्टि मुझसे नहीं हटाना।

- युग्मकम्-

ऊनत्रिंशे केसर-विहारे, विद्या-वैभव-भवनेऽधुना।
जगतत्पुराख्य-जयपुरे, वासी त्वदीय-शुभाशी-राशि-लिप्सुः।।22।।

गुरुपूर्णिमाऽवसरेऽद्य, सर्वथा गुरो! हर्ष-निर्भर-मानसः।
स्वाशयमिमं विनिवेश्य, विरमति नमन्निह नारायण काङ्करः।।23।।

-विद्या-वैभव-भवन, 29, केसर-विहार, जगत्पुरा, जयपुर-302017 (राज.) में निवासकर्त्ता आपकी शुभाशीराशि- प्राप्ति का इच्छुक गुरुपूर्णिमा के अवसर पर आज हे गुरुदेव ! सर्वथा हर्ष से भरपूर मानस वाला बना हुआ यह नारायण काङ्कर अपने इस आशय को विशेषरूप से आपको निवेदित करके नमन करता हुआ अब यहीं विराम ग्रहण करता है।

कविवाणी

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था, सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणाम्, धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।

किसी की ज्ञानपूर्ण क्रिया अपने तक ही सीमित रहती है और किसी दूसरे की क्रिया अपने ज्ञान को दूसरे तक पहुँचाने में समर्थ होती है। जो कला का पर्याप्त ज्ञान भी रखता है और उसको दूसरों तक पहुँचा भी सकता है, वही शिक्षकों में ऊँचे पद पर स्थापित करने के योग्य होता है।

Some kind of people have sufficient knowledge and can show that practically also which remains limited upto them. The other kind of people have less knowledge but they can transfer their knowledge to others.

The person who possesses sufficient knowledge and can transfer it to others is apt for the highest post of teachers; he is the best teacher.

आचार्य : शास्त्राधिगमहेतूनाम्

प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड़
राष्ट्रपतिसम्मानित विद्वान्
पूर्व निदेशक - राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर
पूर्व कुलपति-डॉ. एस.आर राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर

अध्यात्मप्रधान भारतवर्ष में ज्ञान का आदि स्रोत ब्रह्मा को माना गया है। किसी भी विषय से सम्बन्धित प्रारम्भिक ज्ञान ब्रह्मा के मुख से उद्गीरित होकर पृथक् पृथक् विषयों के प्रारम्भिक उपदेश को देवविशेष या महर्षिविशेष ने ग्रहण कर उसे लोक में प्रसारित किया। आयुर्वेद का उपदेश ब्रह्मा के द्वारा ही प्राथमिक रूप से दक्ष प्रजापति को दिया गया है। अतः आयुर्वेद के प्रथम उपदेष्टा एवं आदि गुरु ब्रह्मा ही हैं। लेकिन उन्हें सृष्टि के सृजनकर्ता के रूप में ही महत्त्व प्रदान किया गया है। उन्हें गुरुरूप में प्रतिष्ठित नहीं किया गया, फिर भी गुरुत्व तो ब्रह्मा में है ही।

ब्रह्मा के अनेक नाम हैं, उनमें इनका सृष्ट्युत्पादक स्वरूप ही विशेषेण प्रतिभासित होता है, धाता, विधाता, पितामह, स्रष्टा, वेधा (विदधाति इति), प्रजापति, विश्वसृट् आदि ऐसे अनेक नाम हैं जिनमें इनका सृष्टिकर्ता के रूप में परिचय प्राप्त होता है। अत्यन्त ही शान्त, दान्त, धीर, गम्भीर, चतुर्मुख ब्रह्मा सृष्ट्युत्पादक होते हुए भी ज्ञानपुञ्ज के प्रतीक रहे हैं। ब्रह्मा पद की व्युत्पत्ति करते हुए कोशकार कहते हैं कि "बृंहति वर्धयति प्रजा इति ब्रह्मा"। "बृंहि वृद्धौ शब्दे च (736)" धातु से मनिन् प्रत्यय होकर नकार को "आ" आदेशपूर्वक ब्रह्मा शब्द की निष्पत्ति होती है। मूलतः ब्रह्मन् शब्द से ब्रह्मा बनता है। ब्रह्मा स्वयंभू हैं, अपने आप उत्पन्न हुए हैं, इसीलिए ज्ञान के भण्डार और ज्ञान के प्रारम्भिक उपदेशक भी ब्रह्मा ही रहे हैं।

ब्रह्मा ने ज्ञान को उत्पन्न नहीं किया अपितु स्मरण किया है-

ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन्॥ (अ.हृ.सू.1/3)

स्मृत्वेत्यनेनैतद्दर्शयति ब्रह्मणः स्मर्तृत्वमेवात्र न कर्तृत्वम्। नित्यत्वादायुर्वेदस्य।(अरुणदत्त)

अतः ज्ञान आयुर्वेदसम्बन्धी हो या अन्य किसी भी विषय से सम्बन्धित ज्ञान हो वह ज्ञात किया गया है, ज्ञात किया जाता है और ज्ञात किया जाएगा। ज्ञान कभी भी उत्पन्न नहीं होता इसीलिए ज्ञान को शाश्वत माना जाता है। आयुर्वेद को शाश्वत मानने में यही एक प्रमुख कारण है-

सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात्, भावस्वभावनित्यत्वाच्च | (च.सू.30/27)

गुरु के रूप में प्राथमिक सम्बोधन बृहस्पतिदेव का किया जाता है। ब्रह्मा के बाद ज्ञान के देवता के रूप में बृहस्पति को माना गया है। पौरोहित्य कार्य एवं अन्य ज्ञानमूलक कार्यों का सम्पादन करने वाले तथा देवताओं को समय-समय पर उपदेश एवं परामर्श देने वाले बृहस्पति में गुरु शब्द सम्बोधन के रूप में प्रयुक्त किया गया और यह योगरूढ़ भी हो गया।

बृहस्पति को "बृहतां सुराणां पतिः आचार्यः" माना जाता है तथा गुरुपद एवं गुरुस्वरूप प्राथमिक रूप से इन्हीं में प्रतिष्ठित है, "गीर्पतिः" एवं "वाचस्पतिः" स्वरूप को प्राप्त बृहस्पति के विना देवताओं के यज्ञकार्य सम्पन्न नहीं होते थे, ये अपनी मन्त्रशक्ति से देवताओं का रक्षण भी करने में प्रवीण माने गए हैं|

देवलोक में गुरुरूप में प्रतिष्ठित बृहस्पति को देवगुरु माना गया है, उसी तरह पृथ्वी पर प्राथमिक रूप से महर्षि वेदव्यास में गुरुस्वरूप प्रतिष्ठित हुआ है। वेदों का व्यवस्थित रूप में प्रस्तुतीकरण एवं पुराणों की रचना महर्षि वेदव्यास के द्वारा की गई है। गुरुपूर्णिमा को व्यासपूर्णिमा भी कहा जाता है। भारतीय संवत्सर की गणना के अनुरूप वर्ष के चतुर्थ माह आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन वेदव्यास जी का जन्म माना गया है, इसी दिन गुरुपूर्णिमा श्रद्धापूर्वक मनाई जाती है, उत्सव रूप में गुरुपूर्णिमा जब से भी मनाई जाती है तब से ही महर्षि वेदव्यास को गुरुरूप में प्रथम पूज्य माना जाता रहा है।

वेद ब्रह्मा के मुख से उद्गीरित हैं, लेकिन इस ज्ञान का प्रसारण महर्षि वेदव्यास ने किया। महर्षि वेदव्यास जी ने पुराणों की भी रचना की तथा सम्पूर्ण सृष्टि में अध्यात्म का सन्देश प्रसारित किया, इसीलिए ज्ञानमूर्ति वेदव्यास जी को गुरु के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इस से यह साङ्केतिक भावाभिव्यक्ति होती है, कि ज्ञान का सामान्य रूप से सभी के लिए प्रसारण करने वाले अथवा व्यक्तिविशेष को ज्ञान प्रदान करने वाले (उपदेश करने वाले) व्यक्तिविशेष को गुरु माना जाता है।

भारतवर्ष में प्रारम्भिक काल में ऋषि-महर्षियों के द्वारा ज्ञान का प्रसार किया जाता था। अनेक प्रकार के ऋषि-महर्षि ज्ञान को देशविशेष में, प्रान्तविशेष में, समाजविशेष में अथवा व्यक्तिविशेष में सङ्क्रान्त करते आए हैं। भारतवर्ष में साधु-सन्तों और परिव्राजकों ने ज्ञान के प्रसार में महती भूमिका का निर्वाह किया है। ये साधु-सन्त शालीन और यायावर दोनों ही प्रकार के हुआ करते थे। शालीन स्थानविशेष पर रहकर इस प्रक्रिया को सम्पन्न करते थे, जबकि यायावर भ्रमण करते हुए ज्ञान का प्रसार किया करते थे। भारतवर्ष में ऋतुचक्र के सामान्य क्रम के अनुरूप सर्दी, गर्मी एवं वर्षा के रूप में छः ऋतुएं मानी जाती रही हैं-

अत्र खलु तावत् षोढा प्रविभज्य कार्यमुपदेक्ष्यते- हेमन्तो ग्रीष्मो वर्षाश्चेति शीतोष्णवर्षलक्षणास्त्रय ऋतवो भवन्ति, तेषामन्तरेष्वितरे साधारणलक्षणास्त्रय ऋतवः- प्रावृट्शरद्वसन्ता इति| (च.वि.8)

प्रावृट् एवं वर्षा ऋतु को मिलाकर चार माह वर्षा के माने जाते हैं, वर्षा के प्रारम्भ में आषाढ़ शुक्ला द्वादशी के दिन से साधु-सन्त चातुर्मास करने के लिए एकस्थानस्थित हो जाते हैं, उसी क्रम में शिष्य गुरुपूर्णिमा का उत्सव उस ज्ञानप्रक्रिया के प्रारम्भिक काल में विधिपूर्वक गुरु की (उपदेष्टा की) पूजा करके ज्ञानयज्ञ का उपक्रम प्रारम्भ करते हैं।

आचार्यः शास्त्राधिगमहेतूनाम्-

शाश्वत एवं अनादि आयुर्वेद का अवतरण उपदेश के माध्यम से हुआ तथा परम्परागत रूप से यह उपदेशमूलक आयुर्वेद निरन्तर अग्रिम सन्ततियों में सङ्क्रान्त होता रहा। इन उपदेशों को तन्त्ररूप में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में आयुर्वेद में संहिताएं प्रथमतः गणनीय हैं। इन संहिताओं में गुरु (उपदेष्टा) के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। चरकसंहिता के सूत्रस्थान के 25 वें अध्याय में कुछ अग्र्य (अग्र्यशब्दः श्रेष्ठवचनः) निर्दिष्ट दिए गए हैं, जो अपने-अपने समूह में सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। यथा-

अग्र्याणां शतमुद्दिष्टं यद्द्विपञ्चाशदुत्तरम्|
अलमेतद्विकाराणां विघातायोपदिश्यते || (च.सू. 25/41)

इसी क्रम में आचार्य को शास्त्रप्राप्ति के हेतुओं में अग्र्य (प्रथम गणनीय, सर्वोत्कृष्ट) माना गया है- "आचार्यः शास्त्राधिगमहेतूनाम्"। सामान्य परिभाषा की दृष्टि से इतना ही कह देना पर्याप्त है, कि जो उपदेश देता है वह उपदेष्टा (गुरु) होता है। ज्ञान के उपायों के माध्यम से शास्त्रज्ञान की प्राप्ति करवाने वाले अनेक हेतुओं में आचार्य (गुरु) को ही प्रधान माना जाता है। अधिगम का तात्पर्य है- अर्जन, प्रापण।

त्रिविध ज्ञानोपाय-

चरकसंहिता में ज्ञान के तीन उपाय निर्दिष्ट किए गए हैं- अध्ययन, अध्यापन एवं तद्विद्यसम्भाषा। यथा-

तत्रोपाययाननुव्याख्यास्यामः- अध्ययनम्, अध्यापनं, तद्विद्यसम्भाषा चेत्युपायाः | (च.वि.8/6)।

यह ज्ञानप्राप्ति के समस्त हेतुओं का संक्षिप्तीकरण है। इन तीनों में सम्पूर्ण शास्त्रों के अधिगम (प्रापण) के हेतुओं का समावेश हो जाता है। इन तीनों के माध्यम से शास्त्र की प्राप्ति करवाने वाला आचार्य (गुरु) ही प्रधान (श्रेष्ठ) होता है।

चरकसंहिता में आचार्य (उपदेष्टा, गुरु) के सम्बन्ध में अनेक निर्देश हैं, इन में आचार्य के गुणों को एक स्थान पर भी निर्दिष्ट किया गया है तथा विभिन्न स्थानों पर विशिष्ट गुणों को भी संकेतित किया गया है , उनमें से कुछ विशिष्ट सन्दर्भों के अनुरूप आचार्य (उपदेष्टा ,गुरु) का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

A. आचार्य (गुरु) के सामान्य गुण –

ततोऽनन्तरमाचार्यं परीक्षेत; तद्यथा- पर्यवदातश्रुतं परिदृष्टकर्माणं दक्षं दक्षिणं शुचिं जितहस्तमुपकरणवन्तं सर्वेन्द्रियोपपन्नं प्रकृतिज्ञं प्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतविद्यमनहङ्कृतमनसूयकमकोपनं क्लेशक्षमं शिष्यवत्सलमध्यापकं ज्ञापनसमर्थं चेति| एवङ्गुणो ह्याचार्यः सुक्षेत्रमार्तवो मेघ इव शस्यगुणैः सुशिष्यमाशु वैद्यगुणैः सम्पादयति || (च.वि.8/4)

अर्थात् उसके बाद आचार्य की परीक्षा (अन्वेषण) करे, वह जैसे- पर्यवदातश्रुत (जो शास्त्र के गुणों (अर्थों) से परिचित होने से निर्मल ज्ञान युक्त हो) तथा परिदृष्टकर्मा हो (प्रत्येक कर्म को जिसने निकटता से देखा हो), दक्ष (अवाम बुद्धि वाला), दक्षिण (कुशल, निपुण, योग्य), शुचि (शारीरिक एवं मानसिक रूप से पवित्र), जितहस्त (हस्तकौशलयुक्त), उपकरणवान् (उपयुक्त उपकरणों से सुसज्जित), सर्वेन्द्रियोपपन्न (सम्पूर्ण इन्द्रियों से युक्त), शिष्य की प्रकृति को जानने वाला, प्रतिपत्तिज्ञ (उचित समय में समुचित रूप से प्रवृत्ति वाला, यथाकर्तव्यतानुष्ठान में दक्ष), अनुपस्कृतविद्य (शास्त्रान्तरज्ञान से युक्त), अनहङ्कृत (अहंकार रहित), अनसूयक (ईर्ष्यारहित), अकोपन (क्रोधरहित), क्लेशक्षम (कष्टों को सहन करने वाला), शिष्यवत्सल (शिष्यों पर पुत्रवत् प्रेम रखने वाला), अध्यापक (अध्यापन कराने वाला), ज्ञापनसमर्थ (समझाने में समर्थ) जो हो उस आचार्य को ढूँढे। जिस तरह सेअच्छे उपजाऊ खेत को वर्षाकालीन मेघ शस्य (धान्य, घास) आदि से सम्पन्न कर देता है, उस तरह से इन गुणों से युक्त आचार्य सुयोग्य शिष्यों को शीघ्र ही वैद्यगुणों से युक्त बना देता है|

B. आचार्य (उपदेष्टा, गुरु) के विशिष्ट गुण-

१. अनुपस्कृतविद्य –

उपर्युक्त सामान्य गुणों में आचार्य ने अनुपस्कृतविद्य भी बताया है उपस्कृत का अर्थ संस्कृत और विकृत ये दोनों ही होते हैं, इसलिए चक्रपाणि ने इसे अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि- **अनुपस्कृतविद्यमिति शास्त्रान्तरज्ञानेन नास्त्येवोपस्कृता विद्या यस्य स तथा; य आयुर्वेदज्ञः सञ्छास्त्रान्तरेणापि संस्कृतो भवति, स तु नितरामुपादेयः| (चक्रपाणि)**

इसका तात्पर्य यह है कि दूसरे शास्त्र के ज्ञान से नहीं है विकृत विद्या जिसकी वह अनुपस्कृतविद्य होता है। कुछ आचार्य यहाँ उपस्कृतविद्य यह पाठ स्वीकार करते हैं, जिसका तात्पर्य है जो शास्त्रान्तर ज्ञान से संस्कृत हो वह उपस्कृतविद्य होता है।

प्राचीन काल से ही इस बात को स्वीकृत किया गया है कि जो गुरु अपने शास्त्र में तो निपुण हो, लेकिन अन्य शास्त्रों में भी यदि निपुण होता है तो वह ज्ञान को श्रेष्ठतापूर्वक शिष्यों में सङ्क्रान्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में यह कहना अधिक उपयुक्त है कि आचार्य (उपदेष्टा, गुरु) जिस विषय का विशेषज्ञ है, उस विषय से सम्बन्धित अन्य शास्त्रों में स्थित ज्ञान को भी वह जानता है, तो अपने विषय का प्रतिपादन श्रेष्ठतापूर्वक कर सकता है।

चरकसंहिता में आचार्य के कुछ विशिष्ट गुणों को एकत्र निर्दिष्ट किया गया है लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य कुछ विशिष्ट गुण भी हैं जो विभिन्न स्थानों पर सङ्केतित हैं, यथा-

2. विपुला बुद्धि –

आयुर्वेद के उपदेष्टा (गुरु) के रूप में प्रतिष्ठित इन्द्र के वैशिष्ट्य को बताने के लिए यह कहा गया है कि **"पदैरल्पैरमतिं बुद्ध्वा विपुलां परमर्षये" (चरक)।**

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि गुरु में अल्प पदों से सम्पूर्ण ज्ञान को प्रदान करने का सामर्थ्य होना चाहिए, यह तभी सम्भव है जब शिष्य में विपुला बुद्धि हो। यहाँ शिष्य के रूप में स्थित महर्षि भरद्वाज की बुद्धि को विपुला बताया गया है| इससे ही उपदेष्टा इन्द्र की बुद्धि भी विपुला थी यह संसिद्ध है। विपुला बुद्धि के विना अल्प पदों में जिस तरह से ज्ञान लेना सम्भव नहीं है उसी तरह से ज्ञान देना भी सम्भव नहीं है। आचार्य चरक त्रिविध शिष्यबुद्धि का निर्देश

करते हैं, वे कहते हैं कि- इस प्रकार का शिक्षण होना चाहिए जो अल्प, मध्यम और विपुल बुद्धि वाले तीनों प्रकार के शिष्यों को यथायोग्य रूप से ग्रहण करने में सुगम हो।

सुमहद्यशस्विधीरपुरुषासेवितमर्थबहुलमाप्तजनपूजितं त्रिविधशिष्यबुद्धिहितमपगतपुनरुक्तदोष-मार्षं सुप्रणीतसूत्रभाष्यसङ्ग्रहक्रमं स्वाधारमनवपतितशब्दमकष्टशब्दं पुष्कलाभिधानं क्रमागतार्थ-मर्थतत्त्वविनिश्चयप्रधानं सङ्गतार्थमसङ्कुलप्रकरणमाशुप्रबोधकं लक्षणवच्चोदाहरणवच्च, तदभिप्रपद्येत शास्त्रम्| (च.वि.8/3)

इस तरह का त्रिविध शिक्षण आचार्य के बुद्धिवैभव पर ही निर्भर है।

३. शास्त्र का वैशिष्ट्य गुरु में भी सन्निविष्ट-

चरकसंहिता में शास्त्र का वैशिष्ट्य बताते समय कुछ विशेष गुणों का उल्लेख किया गया है। शास्त्रों के निर्माता, प्रस्तुतकर्ता और विश्लेषणकर्ता गुरु ही होते हैं, अतः शास्त्र के उपयोगकर्ता के जो विशिष्ट गुण बताए हैं वे गुरु में भी होते हैं। चरकसंहिता में शास्त्र के ये विशिष्ट निर्दिष्ट गुण निम्नानुसार हैं- महद्यशस्विसुधीरपुरुषासेवितम्।

अतः महान्, यशस्वी एवं धीर गुणों से युक्त पुरुष जिन शास्त्रों का सेवन करते हैं वे शास्त्र श्रेष्ठ होते हैं। इस से यह भी सिद्ध है कि ये तीनों गुण शास्त्र का अध्यापन करवाने वाले गुरु में भी होते हैं।

4. शालीन-

जिन ऋषियों ने भरद्वाज को इन्द्र के पास पढ़ने भेजा तथा जिनको भरद्वाज ने वापस आकर ज्ञान दिया, उनमें शालीन और यायावर दोनों प्रकार के ब्राह्मण या ऋषि उपस्थित थे। अतः जब शालीन और यायावर ने शास्त्रज्ञान ग्रहण करने के बाद आचार्य के रूप में यह ज्ञान अपने शिष्यों को दिया तो उन शिष्यों में भी ये दोनों प्रकार प्रतिष्ठित हो गए। यद्यपि शालीन और यायावर की अनेक प्रकार की परिभाषाएं और विश्लेषण पुराणों तथा उपनिषदों में विभिन्न प्रकार से किये गये हैं, लेकिन संक्षेप में यह मान लिया जाना चाहिए कि जो एक स्थान पर स्थित होकर ज्ञान देते हैं वे आचार्य शालीन होते हैं तथा जो घूम घूम कर भ्रमण करते हुए उपदेश देते हैं, वे यायावर होते हैं।

ऋषयः खलु कदाचिच्छालीना यायावराश्च ग्राम्यौषध्याहाराः सन्तः साम्पन्निका मन्दचेष्टा नातिकल्याश्च प्रायेण बभूवुः| (च.चि.1/4/3)

कभी-कभी एक ही गुरु में ये दोनों गुण भी दिखाई देते हैं, जैसे आत्रेय महर्षि कदाचित् शालीन स्वरूप में और कदाचित् यायावर स्वरूप में अपने शिष्यों को आवश्यक ज्ञान दिया करते थे, जब पंचकर्मसम्बन्धी ज्ञान और चिकित्सासम्बन्धी सैद्धान्तिक और प्रायोगिक ज्ञान देने का क्रम रहा तब उनकी स्थिति शालीन रूप में प्रमुख थी।

5. यायावर-

लेकिन द्रव्यगुणसम्बन्धी विवेचन या विशिष्ट औषधियों के अन्वेषण के समय में उनका यायावर रूप भी दिखाई देता है,यथा-

जनपदमण्डले पञ्चालक्षेत्रे द्विजातिवराध्युषिते काम्पिल्यराजधान्यां भगवान् पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृतः पश्चिमे घर्ममासे गङ्गातीरे वनविचारमनुविचरञ्छिष्यमग्निवेशमब्रवीत्॥

(च.वि.3/3)

6. शिष्यार्थी –

गुरु विशिष्ट शिष्य या शिष्यों को ज्ञान प्रदान करते थे तथा बाद में वे शिष्य ही गुरुत्व रूप को प्राप्त कर इस ज्ञान का प्रसार आगे किया करते थे | जब तक वह गुरु से प्राप्त ज्ञान को अग्रिम शिष्यपरम्परा में सङ्क्रान्त नहीं कर देते थे तब तक वे गुरुऋण से उऋण नहीं हुआ करते थे-

इन्द्रे त्विदमधिकं- यदयमसङ्क्रामितविद्यत्वेन शिष्यार्थी | यदुक्तं- "यो हि गुरुभ्यः सम्यगादाय विद्यां न प्रयच्छत्यन्तेवासिभ्यः स खल्वृणी गुरुजनस्य महदेनो विन्दति" इति, अतोऽकृतशिष्यत्वेन शिष्यार्थित्वविशेषयोगाद्ब्रह्मादिभ्यो विशेषेणेन्द्र एव शरण्य इति | (च.सू.1/4 चक्रपाणि)

आज भी श्रेष्ठ गुरु के लिए यही स्थिति है |

7. पुण्यकर्मा

आयुर्वेद के अवतरण के क्रम में ज्ञान ग्रहण करने वाले जो ऋषि-महर्षि एकत्रित हुए (समेताः पुण्यकर्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे (च.सू.1/7)

वे सभी पुण्यकर्मा (पुण्यं पावनं कर्म येषां ते पुण्यकर्माणः) थे, बाद में वे सभी आचार्य (उपदेष्टा, गुरु) के रूप में प्रतिष्ठित हुए। ये सभी आचार्य तपोपवासाध्ययनब्रह्मचर्यव्रतायु भी थे, अतः आचार्य का एक विशिष्ट गुण पुण्यकर्मा भी माना गया है तथा ये सभी तपोपवासादि करने वाले थे।

8. तन्त्रनिर्माण की प्रक्रिया से अभिज्ञ-

गुरु से प्राप्त ज्ञान को शिष्य जब तन्त्ररूप में निबद्ध करते हैं तो उस प्रक्रिया का ज्ञान वे आचार्य से ही गृहीत करते हैं, अतः यह स्पष्ट है कि आचार्य भी तन्त्रनिर्माण की प्रक्रिया से अभिज्ञ होते हैं।

बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं मुनेः|
तन्त्रस्य कर्ता प्रथममग्निवेशो यतोऽभवत् || (च.सू.1/32)

9. सूत्रनिर्माण में दक्ष –

शिष्य यदि सूत्रनिर्माण करने की प्रक्रिया में दक्ष होते हैं तो यह सूत्रनिर्माण की प्रक्रिया उन्हें गुरु से ही प्राप्त होती है| गुरु व्याख्येय विषयों का अध्यापन कराते समय विषयों को सूत्ररूप में आबद्ध करते हैं| आचार्य आत्रेय से अध्ययन करने वाले शिष्यों ने पढ़े हुए उन विषयों को अपनी दृष्टि से पुनः सूत्र रूप में आबद्ध किया एवं उनका गुरु से अनुमोदन करवाया-

श्रुत्वा सूत्रणमर्थानामृषयः पुण्यकर्मणाम्|
यथावत्सूत्रितमिति प्रहृष्टास्तेऽनुमेनिरे|| (च.सू.1/34)

अतः यह स्पष्ट है कि आचार्य (गुरु) में विषय को सूत्ररूप में आबद्ध करने का वैशिष्ट्य होना चाहिए।

१०. ज्ञानदेवताओं का प्रवेश –

चरकसंहिता के प्रथम अध्याय में शिष्यों के दीक्षान्त स्वरूप का सङ्केत किया गया है। इस क्रम में आचार्य ने शिष्यों में जिन विशेषताओं को अपरिहार्य माना है, उनका भी सङ्केत है । यह इस बात का द्योतक है कि ये सभी विशेषताएं आचार्य में भी होती हैं तभी वह शिष्यों में इन को सङ्क्रान्त कर पाता है । चरकसंहिता में शिष्यों में बुद्धि-स्मृति इत्यादि ज्ञानदेवताओं का प्रवेश बताया है-

अथाग्निवेशप्रमुखान् विविशुर्ज्ञानदेवताः|
बुद्धिः सिद्धिः स्मृतिर्मेधा धृतिः कीर्तिः क्षमा दया || (च.सू.1/39)

इससे पहले सभी गुरु जब शिष्य रूप में होते हैं तथा शास्त्र में निष्णात होने के चरमोत्कर्ष में होते हैं तब ये सभी गुण उनमें भी प्रविष्ट होते हैं। इसीलिए श्रेष्ठज्ञान की स्थिति के परिचायक बुद्धि, सिद्धि, स्मृति, मेधा, धृति, कीर्ति, क्षमा,

दया इत्यादि से युक्त शिष्य निष्णात माना जाता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि वह अब आचार्य बनने के योग्य हो जाता है। इस से यह सङ्केत भी है कि आचार्य में भी ये गुण पहले से सन्निबिष्ट होते हैं, ऐसे आचार्य इस लोक में प्रतिष्ठा (प्रतिष्ठा जनोपादेयतयाऽवस्थानम्) को प्राप्त करते हैं।

11. सत्त्वोत्कर्ष-

आचार्य (उपदेष्टा, गुरु) मोह, इच्छा,द्वेष इत्यादि विकृत्यात्मक मानसिक भावों से विरहित होना चाहिए, जिस में सत्त्वोत्कर्ष होता है वही श्रेष्ठ आचार्य होता है। प्रमेह के प्रसङ्ग में आचार्य (उपदेष्टा, गुरु) के लिए इस तरह के विशेषणों का प्रयोग किया गयाहै-

निर्मोहमानानुशयो निराशः पुनर्वसुर्ज्ञानतपोविशालः |
कालेऽग्निवेशाय सहेतुलिङ्गानुवाच मेहाञ्शमनं च तेषाम् || (च.चि.6/3)

निर्गता मोहादयो यस्य स तथा; अनुशयः कोपः| निर्गता आशा यस्य स निराशः नीरागः।

चरकसंहिता में अन्य अनेक स्थलों पर विकृत्यात्मक मानसिक भावों का उल्लेख है, इनमें से कुछ को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, यथा-

कामक्रोधलोभमोहेर्ष्याह्रीशोकमानोद्वेगभयोपतप्तमनसा रजस्तमश्च मानसौ दोषौ | तयोर्विकाराः कामक्रोधलोभमोहेर्ष्यामानमदशोकचित्तो(न्तो)द्वेगभयहर्षादयः| (च.वि.6/5)

चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा| (च.चि.10/5)

लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत्|
नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान्|| (च.सू.7/27)

इन भावों से रहित आचार्य (उपदेष्टा, गुरु) आप्त (रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तः) ही श्रेष्ठ अध्यापन-कार्य सम्पन्न कर सकता है। यहाँ एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि अध्यापन कार्य करवाते समय आचार्य रजोदोष एवं तमोदोष से विनिर्मुक्त हो कर दुराग्रहरहित होता है तभी वह यथार्थ अध्यापन में समर्थ होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आचार्य को सर्वदा इन दोनों दोषों से विरहित ही होना चाहिए तथापि किञ्चिद् रजोदोष और तमोदोष से युक्त है, तो भी अध्यापन कराते समय विशेष रूप से इन दोषों से विनिर्मुक्त होकर ही अध्यापन कार्य करना चाहिए , इन दोनों दोषों से विनिर्मुक्त आचार्य में ही आप्तत्व सम्भव है।

12. प्राणभृतां शरण्य -

अपने श्रेष्ठ उपदेशों से सम्पूर्ण प्राणधारियों के कष्ट के निवारणार्थ उपाय बताने वाला तथा शिष्य को भी अपने इन्हीं गुणों से युक्त बना देने वाला आचार्य तथा शिष्यों के प्रत्येक संशय का निवारण करने वाला आचार्य शरण्य माना गया है। शरणमिति रक्षितारम् (च.सू.1/15-17 पर चक्रपाणि) जो शरण देने योग्य हो वह शरण्य होता है।

13. आचार्यत्वावाप्ति -

अध्ययन समाप्त कर लिया है जिसने ऐसा दीक्षा प्राप्त शिष्य गुरु के उन उपदेशों को अग्रिम शिष्यपरम्परा में सङ्क्रान्त करता है तो वह आचार्य पद प्राप्त कर लेता है, ऐसी स्थिति में अपने गुरुओं के उपदेश को ग्रहण करते समय जो शिष्य था वह उन गुरुओं का अब भी शिष्य है लेकिन जब वह उपदेश देता है तो अपने शिष्यों के प्रति गुरुत्व भाव को प्राप्त करता है। इस सन्दर्भ में चरकसंहिता के व्याख्याकार चक्रपाणि कहते हैं कि –

नहि जात्या गुरुत्वमस्ति, यतः स एवात्रेयः स्वगुरुमपेक्ष्य शिष्यः, अग्निवेशादीनपेक्ष्य गुरुः; एवमग्निवेशोऽपि ग्रन्थकरणकाले स्वबुद्धिस्थीकृताञ् शिष्यान् प्रति गुरुरिति न कश्चिद्दोषः| (च.सू.1/2 चक्रपाणि)

14. शाश्वत ज्ञान के सङ्क्रान्तिचक्र का प्रणेता-

शाश्वत ज्ञान की सङ्क्रान्ति का यह एक चक्र है जो ज्ञान गुरु अपने गुरु से प्राप्त करता है उस ज्ञान को वह अपने शिष्य में सङ्क्रान्त करता है वह शिष्य गुरुत्व पद को प्राप्त कर नवीन शिष्य में उसे सङ्क्रान्त करता है , क्योंकि वेद्य, वेदन एवं वेदिता इन तीनों के अस्तित्व से ही ज्ञान के शाश्वतत्व की प्रतीति होती है। इन तीनों के स्वरूप को आयुर्वेद के प्रसङ्ग में इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है-

आयु की विद्यमानता, उसका वेदन (ज्ञान) एवं उस ज्ञान का वेदिता (ज्ञाता) की संस्थिति से आयुर्वेद का शाश्वतत्व है। यथा-

तत्रायुषस्तावदायुर्वेदप्रतिपाद्यस्य नित्यत्वम्| न हि नाभूत् कदाचिदायुःसन्तान इति सर्वदैवायुरपरापरसन्तानन्यायेन विद्यते, आयुर्युक्तानां प्राणिनामनुच्छेदादित्यर्थः| एवं बुद्धिसन्तानोऽपि नहि कदाचिन्नाभूदिति योजना| एतेन तस्यापि सन्तानेन नित्यस्यायुषो वेदनमपि नित्यम्| शाश्वतश्चायुषो वेदितेति अनेनायुर्वेदवेदितृनित्यत्वमुक्तम्| एतेन वेद्यवेदनवेदितृणामनादित्वादायुर्वेदस्य नित्यत्वम्| (च. सू.30/27)

यहाँ आयुर्वेद का अधिकरण होने के कारण आयु से सम्बन्धित ज्ञान का शाश्वतत्व निर्दिष्ट किया गया है, जो साङ्केतिक स्वरूप है। इसी के आधार पर सभी प्रकार का ज्ञान वेद्य, वेदन और वेदिता के स्वरूप के द्वारा शाश्वत स्वरूप में संस्थित है । इस शाश्वतत्व की संस्थिति गुरु के कारण है, गुरु अपने शिष्य में इस ज्ञान को सङ्क्रान्त करता है, वह शिष्य भी गुरुपद पर प्रतिष्ठित होकर अपने शिष्य में उसे सङ्क्रान्त कर देता है। अतः सर्वदा उपदेश देने का कार्य गुरु ही करता है , शिष्य सर्वदा उपदेश ग्रहण करने का कार्य करता है।

श्रेष्ठ शिष्य के कारण वह ज्ञान अग्रिम सन्तति में सङ्क्रान्त होता है, लेकिन प्रदाता सर्वदा गुरु होने के कारण गुरु ही पूजित होता है, इसलिए श्रेष्ठ शिष्य सर्वदा गुरु का अर्चन किया करते हैं और गुरुपूर्णिमा इसके लिए एक साङ्केतिक दिवस है। गुरुपूर्णिमा के दिन वह उसे उत्सव रूप में मना कर स्वयं में उत्साह का निरन्तर सञ्चरण करता है तथा अपने नवागन्तुक कनिष्ठ साथियों (प्रविष्ट नवीन छात्रों) में उत्साह का सञ्चरण कर गुरु के समर्चन की प्रक्रिया भी सङ्क्रान्त कर देता है, यह परम्परा निरन्तर चलती रहती है, जो कि प्राचीन (पूर्वतः प्रतिष्ठित) शिष्यों में सातत्य प्रदान करती है, जबकि नवागन्तुक शिष्यों में समर्चन के भाव इस प्रक्रिया से समारोपित होते हैं।

अज्ञ एवं वैधेय (बालिश, मूर्ख) में भी अवधेय एवं ज्ञेय ज्ञान का आधान कर उसे संशयरहित विज्ञ स्वरूप में संस्थापित कर विधेय (विनयग्राही, आश्रव-आशृणोति), निभृत (विनीत, प्रश्रित) एवं सर्वदा शास्त्रज्ञानप्राप्त्यर्थ समुत्सुक बना दे, वह गुरु (गरिष्ठ गुरु) है। जिस गुरु में अधिसंख्य गुणसमुच्चय संस्थित हो, वही सर्वश्रेष्ठ गुरु होता है।

सन्ध्या का महत्त्व

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या, वेदाः शाखाः धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयम्, छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।।

ब्राह्मणरूपी वृक्ष की जड़ सन्ध्या (भगवद्भजन) है। वेद उसकी शाखाएँ हैं और धर्म-कार्य उसके पत्ते है। अतः ब्राह्मण को मूल की रक्षा प्रयत्न से करनी चाहिए (अर्थात् सन्ध्या नियमपूर्वक करनी चाहिए)। यदि जड़ ही कट गयी तो शाखाएँ और पत्र हो ही नहीं सकते।

गुरु की महिमा

धीरेन्द्र कुमार स्वामी
वरिष्ठ साहित्यकार
उपाध्यक्ष–संचालन समिति, श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर

सद्गुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।।

कहते हैं कि मनुष्य की प्रथम गुरु उसकी माता होती है, क्योंकि जन्म के बाद वही सबसे पहले उसके सम्पर्क में आती है। उसे उठना-बैठना, बोलना-चलना, खाना-पीना वही सिखाती है। माता ही बालक में आरंभिक आदतें, गुण व संस्कार विकसित करती है।

उसके पश्चात् जब बालक शाला जाता है, तब 'शिक्षागुरु' के संपर्क में आता है, जो उसे अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ व्यवहारिक ज्ञान एवं सामाजिक शिक्षा प्रदान करता है। तीसरा गुरु वह होता है, जो जीवन को संवारने व उसे आध्यात्म की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह 'दीक्षा गुरु' या 'आध्यात्मिक गुरु' कहलाता है। ये आपको 'गुरुमंत्र' दीक्षित करते हैं, तथा यह संकल्प करवाते हैं, कि आपको जीवन में किस प्रकार का व्यवहार करना है और कैसा नहीं।

गुरु पहले मन सौं कहै, पीछे नैन की सैन।
दादू शिष्य समझै नहीं, कहि समझावै बैन।। (श्रीदादूवाणी जी)

सच्चा गुरु वस्तुतः शिष्य को घड़ता है। जिस प्रकार कुम्भकार को बर्तन घड़ते वक्त कई स्थानों पर चोटें भी लगानी पड़ती है, उसी प्रकार गुरु भी शिष्य के कुसंस्कारों को निष्कासित करने हेतु उसे थपकी लगा देता है। साथ ही स्नेह का पोषण देकर उसमें सुसंस्कारों का प्रवेश भी करवाता है। यहाँ 'शिष्य' कुम्भ होता है, और गुरु 'कुम्भकार'।

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, गढ़ गढ़ काढ़े खोट।
भीतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट।।

संतप्रवर श्री दादूजी महाराज ने अपनी 'अनुभव वाणी' में बताया है, कि गुरु किस प्रकार अपने शिष्य को निखारने के लिये अनेक प्रयत्न करता है।

सोने सेती वैर क्या, मारे घण के घाइ।
दादू काट कलंक सब, राखे कंठ लगाइ।।
पाणी मांही राखिये, कनक कलंक न जाहि।
दादू सद्गुरु पसु माणस करे, माणस थैं सिध कोई।
दादू सिध थैं देवता, देव निरंजन होई।।

गुरु का आदेश होता है, कि तुम ऊपर की ओर उठने के लिये ही पैदा हुए हो नीचे की ओर जाने के लिये नहीं। अर्थात् छोटी-छोटी व ओछी बातें न सोचकर 'उन्नत लक्ष्य' की ओर बढ़ने की सोचो। जीवन में बाधायें तो आती रहेंगी, उनसे डरने की आवश्यकता नहीं है।

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

गुरु की यह विशेषता होती है, कि जो हमारे भीतर बीज रूप में रहता है, उसी को विकसित एवं पल्लवित करने में वह सहायक होता है। आपके भीतर की मंद सुगन्ध भी बाहर निकालता है। सद्गुरु का हृदय वज्र से भी अधिक कठोर एवं पुष्प से भी ज्यादा कोमल होता है। वे अपने शिष्य को बताते हैं, कि कभी ओछी बात मत सोचो, केवल उन्नत लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की सोचो। बाधाओं से हताश न हो, बल्कि धैर्य एवं अपनी कुशलता से इन्हें प्राप्त करो। गुरु तो परमात्मा का ही स्वरूप होता है। यथाः

गुरु ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवै नमः।।

सद्गुरु की महिमा अनंत है। अगर उनकी कृपा हो जाये तो बिना ग्रंथ पढ़े ही पंडित बन जाते हैं। परन्तु अगर आप सांसारिक भोग-विषयों में लिप्त रहते हैं, तो सद्गुरु भी कुछ नहीं कर सकते। दादूवाणी में कहा है-

वैद्य बिचारा क्या करे, रोगी रहे न साच।
खाटा, मीठा, चरपरा, माँगे मेरा वाच।।
सद्गुरु बरजे शिष करे, क्यों कर बंचे काल।
दह दिशि देखत बह गया, पाणी फोड़ी पाल।।

आजकल अनेकों ढोंगी गुरु भी मिल जायेंगे, जो लोगों को भ्रमित करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे गुरुओं के लिए दादूवाणी जी में लिखा हैः

झूँठे अंधे गुरु घणे, भरम दिढावे काम।
बंधे माया मोह से, दादू मुख में राम।।

सद्गुरु के बारे में श्री दादूवाणी में इस प्रकार बताया गया है-

सांचा सद्गुरु जे मिले, सब साज संवारे।
दादू नाव चढ़ाय कर, ले पार उतारे।।

दादू काढ़े कालमुख, अंधे लोचन देय।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, जीव ब्रह्म कर लेय।।

भवसागर में डूबतां, सद्गुरु काढ़े आइ।
दादू खेवट गुरु मिल्या, लीये नाव चढ़ाई।।

दादू सद्गुरु अंजन बाहि कर, नैन पटल सब खोले।
बहरे कानों सुनने लागे, गूंगे मुख सूं बोले।।

जीवन में सद्गुरु से ही 'दीक्षा' लेनी चाहिये। बिना किसी सद्गुरु से दीक्षा लिये हमारा ज्ञान उसी प्रकार अधूरा रहता है, जैसे एक चैक में राशि तो करोड़ों की भरी हो, परन्तु उस पर देने वाले के हस्ताक्षर ही न हों।

हमारे यहाँ यह परम्परा रही है, कि 'गुरुपूर्णिमा' के दिन सभी अपने वर्तमान दिवंगत गुरुओं का पूजन करते हैं। पुष्पांजलि/श्रद्धांजलि अर्पित कर उनका आशीर्वाद लेते हैं। यह दिन 'महाभारत' के रचनाकार महर्षि वेदव्यास के जन्मदिन पर मनाया जाता है। परन्तु वर्तमान में यह परंपरा शनैःशनैः लुप्त होती जा रही है। क्योंकि आज के शिष्य में गुरु के प्रति सम्मान की भावना विकसित ही नहीं होती है। संत कबीर ने गुरु के बारे में लिखा हैः

कबिरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रुठै नहीं ठौर।।

विषय बहुत विशाल है। जितना लिखें कम है। आशा है सभी पाठक अपने गुरुओं को नमन करते होंगे।

।।इति।।

रुद्राष्टकम् (संस्कृतहाईकू)

प्रो. ताराशंकर शर्मा पाण्डेयः
(राष्ट्रपतिसम्मानित)
सेवानिवृत्त आचार्य
साहित्य विभाग, ज.रा.रा.सं.वि.वि., जयपुर

सिद्धं जलधौ
प्राकृतं शिवलिङ्गं
सम्पूजयितुम् ।। 1 ।।

श्रावणमासे
वारिवाहाभिषिक्तं
संसारलिङ्गम् ।। 2 ।।

संप्रतिष्ठते
सूत्थाननारायणं
स्थावरलिङ्गम् ।। 3 ।।

अचलं लिङ्गं
लोके स्याद्भावापन्नं
जगत्प्रतीकम् ।। 4 ।।

लोकैः समर्च्यं
रुद्राष्टाध्यायीमन्त्रैः
पार्थिवलिङ्गम् ।। 5 ।।

परं साधनं
मृत्युञ्जयात्मलिङ्गं
मोक्षाधिगत्यै ।। 6 ।।

वैभवप्राप्त्यै
लोकलोकैर्विभाव्यं
पारदलिङ्गम् ।। 7 ।।

योगक्षेमाय
सम्पूज्यं भक्तिभावैः
शिवदं लिङ्गम् ।। 8 ।।

इति जयपुरवास्तव्येन प्रो.ताराशंकरशर्मपाण्डेयेन विरचितं
रुद्राष्टकं (संस्कृतहाईकू) पूर्णतामगात्।

राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्

संस्कृत-रूपान्तरण-कर्त्ता
आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार
(महामहिम-राष्ट्रपतिसम्मानित)

हिन्दी-रूपान्तरण-कर्त्ता
सौ. श्रीमती इन्दु शर्मा
एम.ए., शिक्षाचार्या

अंग्रेजी-रूपान्तरण-कर्त्ता
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री ज्ञानेश्वरपुरीजी महाराज
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

(गताङ्कादग्रे) **प्रदूषितां स्वयमुनां तु, दर्श दर्श तद् - हृदयं विदीर्येत ।**
कन्यासु दुष्कर्मणा , चापीह वस्तुं मनो नानुमन्यते ॥36॥

प्रदूषित की गई अपनी यमुना को तो देख देख कर उन श्रीकृष्ण का हृदय ही विदीर्ण हो जाए और कन्याओं पर किए जा रहे दुष्कर्म से भी उनको उनका मन यहाँ रहने के लिए अनुमति नहीं दे ।

Krishna's heart will crumble seeing the state of his polluted Yamuna, and his heart would not allow him to live here where so many bad deeds happen to the girls.

वसतौ वसतौ मदिरा, विक्रीयते जन-धन-स्वास्थ्यनाशिका ।
व्यवसायोऽस्याः सम्प्रति, राज्यकोष - संवर्धन - करं मन्यते ॥37॥

बस्ती बस्ती में लोगों के धन और स्वास्थ्य को नष्ट करने वाली मदिरा बेची जा रही है इस मदिरा का व्यवसाय अब राज्य के कोष को बढ़ाने वाला माना जाता है ।

In each and every colony, the destroyer of money and health, liquor is being sold, but the liquor business is considered good for filling the country's treasury. |37| (is it better to say just - In each colony…)

गृहे गृहे मदिरेयं , प्रविश्य तत्सुख-शान्तिमपहृतवती हा ! ।
पुनरपि नहि प्रशासनं, नियन्त्रणमत्र कुरुते स्वं किञ्चन हा ! ॥38॥

घर घर में प्रवेश करके इस मदिरा ने उसकी सुख शान्ति छीन ली है, हा ! दुःख है । फिर भी प्रशासन इस पर अपना कुछ नियन्त्रण नहीं कर रहा है, हा ! दुःख है।

Yes, it is sad that the liquor entered homes and took away peace and happiness and dministration is still not doing anything to control/curb it.

विदेश - शासनेऽपि ये, न श्रुता दृष्टा अपराधाः कुत्रापि ।
स्व-शासनेऽद्य तान् वीक्ष्य, सलज्जं दोदूयते चित्तमविरतम् ॥39॥

विदेशी शासन में भी जो अपराध कहीं भी सुने देखे नहीं गए थे, आज उनको अपने शासन में देख कर मारे शर्म के दिल निरन्तर दुखता रहता है ।

Whatever crimes we heard and seen about in foreign countries, today seeing all this in our country heart is continuously paining out of shame.

राष्ट्रपिता गान्धी प्राग् यादृशं स्वराज्यमभिकामयते स्म ।
तदांशिकपूर्त्तिरपि किं, कुत्रचन दृष्टिमुपैत्यधुना ? ॥40॥

राष्ट्रपिता गांधी जी ने जिस प्रकार के स्वराज की कामना पहले की थी, क्या उसकी आंशिक पूर्ति भी कहीं इस समय देखने में आती है ?

Can anywhere be seen today, even partially, the self-governance envisioned by Gandhi, the Father of the Nation?

स्वराज्यं यथा भवतात्, सुराज्यं किं तत्स्वप्नोऽभूत् सत्योऽत्र ।
स्वराज्यं सु+ऽराज्यमिति,रूपे निगदितुं प्रवृत्ता जना न किम् ?॥41॥

स्वराज जिस प्रकार सुराज्य बने, क्या उन राष्ट्रपिता गांधी जी का यह स्वप्न सत्य हुआ ? स्वराज्य के लोग क्या सु+अराज्य इस रूप में करने को प्रवृत्त नहीं हो गए हैं ?

Did the nation's father Gandhi's dream of the self-governance became true, or did it instead of good-governance become good-non-governance?

कथनाय तु जनतन्त्रे, वयं निवसामः स्वतन्त्राः साम्प्रतं हि ।
परन्तु नैतत् सत्यं, वयं निवसामः स्वकीय - बाबुतन्त्रे ॥42॥

कहने के लिए तो विदेशी शासन से स्वतन्त्र हुए हम निश्चित रूप से जनतन्त्र में निवास करते हैं, परन्तु यह सत्य नहीं है । हम तो अपने बाबुतन्त्र में निवास करते हैं ।

We say that we are free from foreign rule and that we surely live in a democracy, but this is not true. We are living in bureaucracy.

(क्रमशः)

ISSN : 2582-6360

प्रकाशक : विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान – कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org